कवर पेज सहित वर्ष 25 अंक 09 सितम्बर, 2019
36 पृष्ठ मूल्य 15 रुपये

रूपरेखा

सदाचार ~ सद्विचार ~ सत्संस्कार

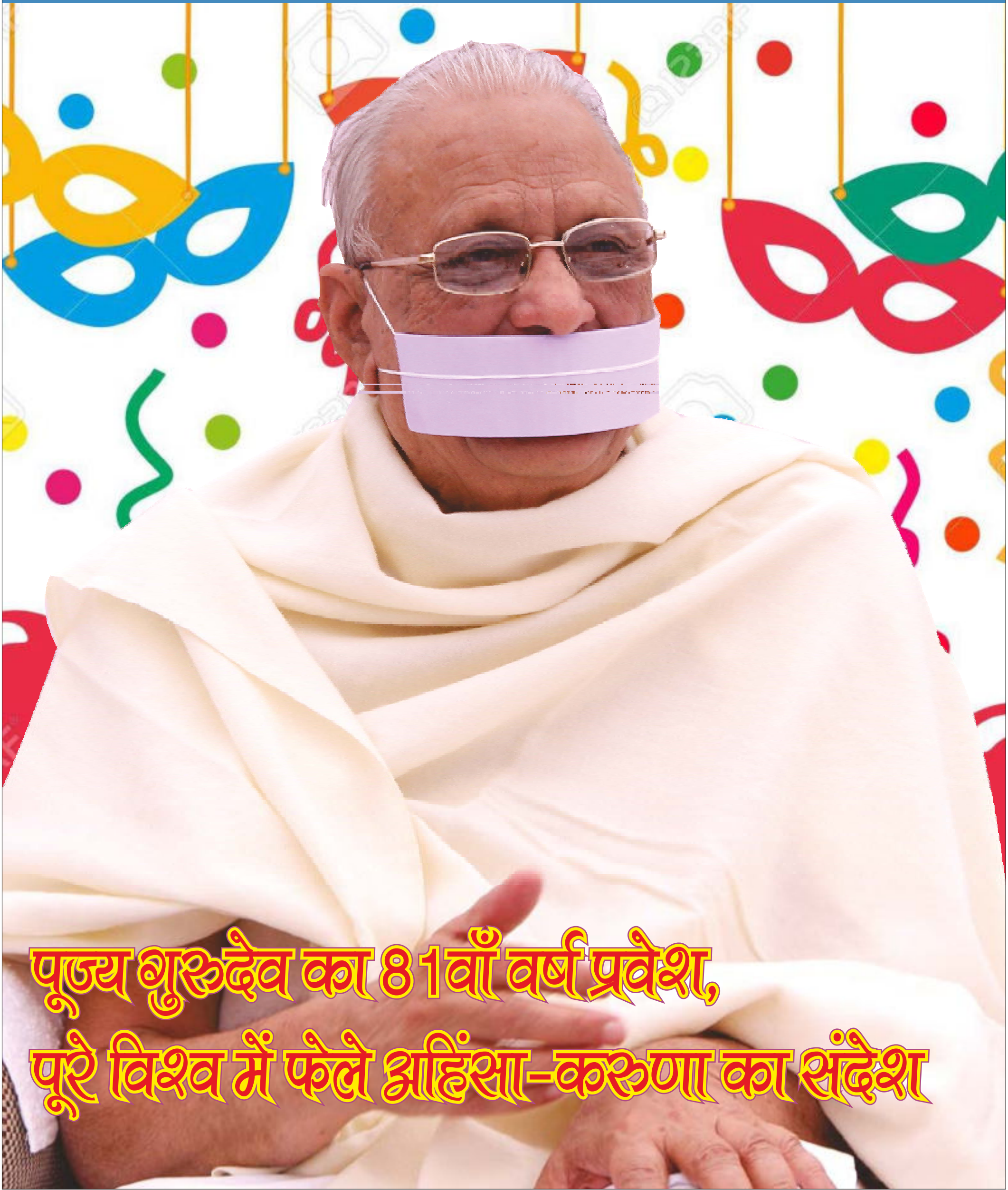

पूज्य गुरुदेव का 81वाँ वर्ष प्रवेश, पूरे विश्व में फैले अहिंसा-करुणा का संदेश

रूपरेखा

सदाचार ~ सद्विचार ~ सत्संस्कार

मार्गदर्शन :
पूज्या प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री जी

संयोजना :
साध्वी कनकलता
साध्वी वसुमती

परामर्शक :
श्रीमती मंजुबाई जैन

प्रबंध संपादक :
अरुण कुमार पाण्डेय

सम्पादक :
श्रीमती निर्मला पुगलिया

वार्षिक शुल्क : 150 रुपये
आजीवन शुल्क : 3000 रुपये

प्रकाशक
अरूण तिवारी
मानव मंदिर मिशन ट्रष्ट (रजि.)
पोस्ट बॉक्स नं. : 3240
सराय काले खाँ बस टर्मिनल के सामने,
नई दिल्ली - 110013
फोन नं. : 26345550, 26821348
Website : www.rooprekha.com
E-mail : contact@manavmandir.info

इस अंक में

सिर्फ संबंध नहीं, न टूटने वाली संवेदना है मैत्री
अहिंसा की चर्चा के प्रसंग में मन में एक शब्द उगता है- मैत्री। इस शब्द से हम सब अच्छी तरह परिचित हैं, लेकिन इसके अर्थ से बहुत कम लोगों का परिचय होगा। हम मैत्री को भी एक संबंध के रूप में लेते हैं जबकि ऐसा है नहीं। संबंध का अर्थ है बांधना। मित्रता में भी साधारणतया हम एक-दूसरे को अपने से बांधते हैं। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि जो बांधा गया है, वह कभी खुल भी जाता है। वह जो स्थापित हुआ है, कभी विस्थापित भी हो सकता है। वह जो जोड़ा गया है, कभी टूट भी सकता है। 04

जरूरत है मिथ्या दृष्टिकोण दूर करने की
नैतिक आंदोलनों की आज जितनी उपयोगिता है, उतनी शायद पहले कभी नहीं रही। हर वस्तु की उपयोगिता समय सापेक्ष होती है। नीको पे फीका लगे, बिन अवसर की बात असमय में अच्छी से अच्छी वस्तु की कोई कीमत नहीं होती। भोजन कितना प्रिय होता है, इसका अनुभव भूखे से पूछें। प्यास से ही पानी, का मूल्य है। 07

हंस अकेला
आनंदमयी मां ने कहा- 'यह सही है कि देहासक्ति टूटे बिना भक्ति निष्काम नहीं रह पाती। किन्तु क्या भूखे रहने से- तपस्या से वह आसक्ति सर्वथा क्षीण हो जाती है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तपस्या से इन्द्रिय-दुर्बलता के कारण वह देहासक्ति क्षीण लगती है, पर क्षीण नहीं होती। वह एक बार सुषुप्त अवश्य हो जाती है। किन्तु ज्यों ही तपस्या पूर्ण हुई, शरीर को अपनी खुराक मिली, इंद्रियां पुनः सबल हुई कि देह और विषयासक्ति भी प्रबल हो जाती है?' 12

भक्ति मंदिर में ही नहीं, जीवन में भी दीखनी चाहिए
श्रद्धालुजन वहां अपने-अपने इष्ट-देवता के चरणों में भाव-विभोर होकर पूजा-आराधना करते हैं। लेकिन वह पूजा-आराधना केवल मंदिर में ही नहीं, जीवन-व्यवहारों में भी दीखनी चाहिए। क्रोध के उत्तर में क्षमा रखना भी पूजा है। वैर-विरोध के उत्तर में प्रेम सद्भावना भी पूजा है। हिंसा के उत्तर में अहिंसा भी पूजा है। दीन-दुखियों के दर्द और कष्ट निवारण के समय उनके प्रति करूणा सेवा भी पूजा है। 27 27

संत-वाणी

हद तापे जो संत है बेहद तपे फकीर।
हद-बेहद दोऊ तपे, वाको नाम कबीर।।

बोध-कथा

चलना तो पड़ेगा

गौतम बुद्ध के प्रवचन में एक व्यक्ति रोज आता था। बड़े ध्यान से वह उनकी बातें सुनता था। बुद्ध अपने प्रवचन में लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकार छोड़ने की बात करते थे। एक दिन वह व्यक्ति बुद्ध के पास आकर बोला, 'मैं लगभग एक महीने से आप के प्रवचन सुन रहा हूं। सुनकर अच्छा भी लगता है पर क्षमा करें, मेरे ऊपर उनका कोई असर नहीं हो रहा है। इसका क्या कारण है? क्या मुझ में कोई कमी है?'

गौतम बुद्ध ने मुस्कुराते हुए पूछा, 'तुम कहां के रहने वाले हो?' उस व्यक्ति ने कहा, 'श्रावस्ती इलाके का रहने वाला हूं।'

बुद्ध ने फिर पूछा, 'श्रावस्ती यहां से कितनी दूर है?' उसने दूरी बताई। बुद्ध का अगला सवाल था, 'वहां कैसे जाते हो?' व्यक्ति ने बताया, 'कभी घोड़े पर तो कभी रथ पर बैठकर जाता हूं।' 'कितना समय लगता है?' उसने हिसाब लगाकर समय बताया। अब बुद्ध ने कहा, 'मान लो बैलगाड़ी या घोड़ा नहीं है तुम्हारे पास। तो क्या तुम बैठे-बैठे श्रावस्ती पहुंच सकते हो?' व्यक्ति ने आश्चर्य से कहा, 'बैठे-बैठे कैसे पहुंचेगा कोई? गाड़ी-घोड़ा न हो तो भी चलना तो पड़ेगा ही। श्रावस्ती ही क्यों, कहीं भी पहुंचने के लिए चलना होता है। बैठे-बैठे तो बस एक जगह बैठे ही रह जाता है इंसान।'

गौतम बुद्ध बोले, 'यह तुमने समझदारी वाली बात कही। बैठे-बैठे इंसान कहीं पहुंच नहीं सकता। किसी भी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए चलना पड़ता है। अब यह बताओ कि मेरी बातों को लेकर तुम कितनी दूर चले? यानी जीवन में उन्हें किस हद तक उतारा? कोई भी ज्ञान तभी सार्थक है, जब उसे व्यवहारिक जीवन में उतारा जाए। मात्र प्रवचन सुनने या अध्ययन करने से कुछ भी प्राप्त नहीं होता।' उस व्यक्ति ने कहा, 'मुझे अपनी भूल का एहसास हो गया है। मैं आप की बताई बातों को सिर्फ सुनूंगा नहीं, उन्हें अपने जीवन में उतारूंगा।

आज ही वो दिन है सुखी होने का

शाश्वत तो सिर्फ जीवन का ही मूल्य है- स्वयं जीवन का बाकी सब मूल्य सामयिक हैं। जीवन परम मूल्य है। उससे ऊपर कोई मूल्य नहीं। बांकी सब मूल्य जीवन के श्रृंगार हैं। सत्य या अहिंसा या करूणा या अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ये सब जीवन का सौंदर्य हैं, जीवन का श्रृंगार हैं।

लेकिन, जीवन से ऊपर कोई मूल्य नहीं है। जीवन है परमात्मा। जीवन है प्रभु। तो जिससे भी तुम ज्यादा जीवंत हो सको और जिससे भी तुम्हारा जीवन ज्यादा प्रखरता को उपलब्ध हो, प्रकाश को उपलब्ध हो, वही शाश्वत मूल्य है। इसलिए शाश्वत मूल्य को कोई शब्द नहीं दिये जा सकते। उसको नाम नहीं दिया जा सकता। समय बदलता है, स्थिति बदलती है, मूल्य बदलते जाते हैं पर एक बात ध्यान में रहे- जीवन जिससे बढ़े, विकसित हो, फैले, ऊंचा उठे।

जीवन की आकांक्षा गहनतम आकांक्षा है। उसी आकांक्षा से मोक्ष पैदा होता है, निर्वाण पैदा होता है। उसी आकांशा से परमात्मा की खोज, सत्य की खोज पैदा होती है। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि जीवन के विपरीत, जीवन के विरोध में बात करने वाले लोग भी- विपरीत भी बात करते हैं तो भी जीवन के लिए ही करते हैं।

यूनान में एक बड़ा विचारक हुआ पिरहो। वो कहता था जीवन में तब तक शांति न होगी जब तक जीवन का अंत न हो। आत्मघात का उपदेश दता था। खुद चौरासी साल तक जिया। कहते हैं कुछ लोगों ने उसकी मानके आत्महात्या भी कर ली। मरते वक्त किसी ने उससे पूछा कि पिरहो, तुमने दूसरों को तो सिखाया कि जीवन की परम शांति तभी है जब जीवन का भी त्याग हो जाए और कई ने आत्महत्या भी कर ली तुम्हारी बातें मानकर, लेकिन तुम तो खूब लंबे जिये। उसने कहा जीना पड़ा, लोगों को समझाने के लिए।

जर्मनी का बड़ा विचारक हुआ शापेनहॉर। वो भी आत्महत्या का पक्षपाती था। खुद उसने की नहीं। करने की तो बात दूर रही, प्लेग फैली, तो जब गांव से सब लोग भाग रहे थे तो भी भाग खड़ा हुआ। राह में लोगों ने पूछा कि अरे, हम तो सोचते थे तुम न भागोगे, क्योंकि तुम तो आत्महत्या में मानते हो। उसने कहा- 'बातचीत एक है! मुझे याद ही न रहा अपना दर्शनशास्त्र, जब मौत सामने खड़ी हो गयी।

बुद्ध ने निर्वाण की बात की है, जहां सब बुझ जाता है। लेकिन वो भी जीवन की ही आकांक्षा है। वो परम शुद्ध जीवन की आकांक्षा है, जहां जीवन के कारण भी बाधा नहीं पड़ती, जहां जीवन की भी सीमा न रह जाए जीवन पर, ऐसे शुद्धतम अस्तित्व की।

प्रस्तुति : निर्मला पुगलिया

पूज्य गुरुदेव के प्रवचन-सारांश

○ रुचि आनंद

सिर्फ संबंध नहीं, न टूटने वाली संवेदना है मैत्री

अहिंसा की चर्चा के प्रसंग में मन में एक शब्द उगता है- मैत्री। इस शब्द से हम सब अच्छी तरह परिचित हैं, लेकिन इसके अर्थ से बहुत कम लोगों का परिचय होगा। हम मैत्री को भी एक संबंध के रूप में लेते हैं जबकि ऐसा है नहीं। संबंध का अर्थ है बांधना। मित्रता में भी साधारणतया हम एक-दूसरे को अपने से बांधते हैं। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि जो बांधा गया है, वह कभी खुल भी जाता है। वह जो स्थापित हुआ है, कभी विस्थापित भी हो सकता है। वह जो जोड़ा गया है, कभी टूट भी सकता है। साफ है कि अगर मैत्री को एक संबंध के रूप में समझेंगे तो उसके साथ ये सारे खतरे जुड़े रहेंगे। संबंध में सामूहिकता होने पर भी उसकी भाव-भूमि सार्वभौम नहीं होती है, क्योंकि बहुधा हर समूह में व्यक्ति खुद को अकेला पाता है। ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जिनमें सारा समूह अपने को पाता है और जो अपने को सारे समूह में पाते हैं। वह जो बाहर से जुड़ा हुआ है, भीतर से जुड़ा नहीं भी हो सकता है। लेकिन जो भीतर से जुड़ा हुआ है, वह बाहर से जुड़ा न होने पर भी उससे अलग नहीं है।

संबंध इसी कारण ऊपर से सुदृढ़ प्रतीत होते हुए भी टूट जाते हैं। सो, मैत्री अगर संबंध है तो सदा खतरे में है, लेकिन अगर वह संवेदना है तो उसके टूटने का प्रश्न ही नहीं है।

सच यह है कि मैत्री हमारा स्वभाव है। वह हमारा 'होना' है। 'होना' स्थिति है, न कि प्रक्रिया। 'स्व' प्रक्रिया का आरंभ है। जिसका आरंभ है उसका अंत भी सुनिश्चित है। स्थिति सनातन होती है। उसमें 'स्व' और 'पर' की पृथक सत्ताएं नहीं होतीं। सारी भेद-रेखाएं विभाव में दिखाई पड़ती हैं। स्वभाव तो अभेद और

एकत्व से सतत संयुक्त है। वह जो हम नहीं हैं, उसी में हमारे होने के भ्रम से सारे भेद खड़े होते हैं। वहीं से सारे संघर्षों का जन्म होता है और अमैत्री का उद्भव होता है।

'तुम' और 'वह' समाप्त होकर जहां 'मैं' ही शेष रह जाता है, चेतना की वही स्थिति भावना के स्तर पर मैत्री, वृत्ति के स्तर पर अहिंसा और जीवन के सारे भौतिक-मानसिक स्तरों पर संयम के रूप में निष्पन्न होती है। उस परम चेतना की अनुभूति में, न हम हैं, न तुम और न वह है, न कोई भी अन्य। मात्र समग्र है, सारे संदर्भों से मुक्त, सारी सीमाओं से परे। सीमा को जानना ही असीम में प्रवेश है। असीम में प्रवेश ही स्व का साक्षात्कार है, यही प्रेम है, मैत्री है। संबंध के रूप में किसी के साथ नहीं, लेकिन स्वभाव के रूप में सर्वत्र सबके साथ।

मैत्री में किसी से जुड़ने की चेतना नहीं होती। इसलिए कि वहां अलगाव है ही नहीं। मैत्री हमारा वह आत्म-भाव है, जिसे न पाया जा सकता है और न खोया जा सकता है। न उसे बनाया जा सकता है, न मिटाया, जोड़ा या तोड़ा ही जा सकता है। मैत्री स्वयं के साथ स्वयं की महामयी चेतना है। खंडित एवं एकपक्षीय भावना नहीं। इस दृष्टि से मैत्री को जिस अर्थ में महावीर ने लिया है, उसका सार यह है कि उसे राग-द्वेष, आकर्षण-विकर्षण, सामीप्य एवं दूरी संबद्ध और असंबद्धता के द्वैत से पृथक करके देखना होगा। अपने में ही अपने प्रति मैत्री का स्रोत खोजना होगा। वह खोज लेंगे तो हम अपने और सबके मित्र होंगे अन्यथा किसी के कुछ भी नहीं हो पाएंगे।

गलतियां स्वीकार करना सीख लें तो दृष्टि बदल जाएगी

यह एक नई तरह का दौर है। इसमें विवेक के लिए ज्यादा जगह नहीं है। सुख की बात तो छोड़ें, दुख भी अब सहमा-सहमा-सा आता है। प्रायः हर आदमी समाज या देश में पैदा हो रही अराजकता के लिए झट से दूसरों पर ऊंगलियां उठा देता है। सचाई की छानबीन करने की जरूरत भी वह महसूस नहीं करता। न्यायालय को जिस फैसले पर जाने में वर्षों लग जाते हैं, हम तुरंत उस फैसले पर पहुंच जाते हैं। कोर्ट में बहस के बाद आरोप तय किया जाता है, हम फैसला सुनाने के बाद बहस में कूदते ही नहीं, माहौल को गर्म भी कर देते हैं। यह जो स्थिति है, दरअसल हमारी कातरता और कायरता का प्रदर्शन है। यही है वह मानसिकता जो हमारी सांस्कृतिक और वैचारिक जमीन को कमजोर कर रही है। ऐसा शायद ही होता है कि दोषी आदमी खड़ा होकर साहस के साथ यह कह सके कि उसकी गलती से माहौल खराब हुआ है।

हमारे सामाजिक जीवन की यह सबसे कमजोर कड़ी है कि हम सच को स्वीकार करने के बजाय उसे ही नासमझी के साथ सूली पर चढ़ाने में लग जाते हैं। यह भी एक तरह का डर है। जिस समाज में डर का प्रभुत्व कायम रहता है, वही सच का सामना करने से कतराता है। डर ही है जो व्यक्ति और समाज को विकसित होने से रोकता है। अगर इस डर को दूर भगाना है तो हमें अपनी गलतियों को स्वीकारने और उन्हें सुधारने का खुद में साहस पैदा करना होगा। सवाल सामाजिक या संस्कृतिक हों या फिर राजनीतिक, उसे उसी की सीमा में ले जाकर हल करने का प्रयास करना चाहिए। उसके आपस के घालमेल के कारण ही हर दिन नए-नए विवाद को आने के मौके मिल रहे हैं।

एक सुखद तथ्य यह भी है कि जब-जब समाज संक्रमण के दौर से गुजरा है, कोई न कोई नया विचार सामने आया है और उसने मानस परिवर्तन की हवा चलाई है। राम हो या कृष्ण, बुद्ध हो या महावीर, गुरु नानक हो या विवेकानंद, दयानंद या फिर गांधी- ये सब इसके ठोस उदाहरण हैं। हर किसी ने देश और समाज को गहरा सकारात्मक जीवन दर्शन दिया। हमें इस मान्यता में विश्वास करना चाहिए कि हर महापुरुष अपने संक्रमण काल की उपज है। उन्होंने सबसे पहले अपने ज्ञान का दरवाजा खोला और अपनी एक दृष्टि बनाई। फिर खुद से ही सवाल किया कि उन्हें मनुष्य-हित में क्या करना है और समाज को बदलने के लिए कौन सा रास्ता अपनाना है। 'स्व' को हासिल करने के बाद 'पर' को अपना लक्ष्य बनाया। यानी व्यष्टि से समष्टि की ओर गए। उनके ज्ञान से समाज को लाभ मिला।

हम उन महापुरुषों को पढ़ते और रटते हैं, लेकिन उनके जीवन को अंगीकार करने में जरा भी दिलचस्पी नहीं दिखाते। शायद हमें पता है कि उन जैसा जीवन जीना या उनकी राह पर चलना संघर्ष को न्योता देना है। इसलिए हम आसान रास्ता चुनते हैं। खुद का रूपांतरण करने से बचते हैं। एक बार हम सब अपनी दृष्टि बदलकर देखें। दृष्टि बदली नहीं कि घटनाओं का संदर्भ बदल जाएगा। संदर्भ बदलते ही अर्थ बदलेगा और अर्थ बदलते ही वातावरण में परिवर्तन आ जाएगा। हर किसी का जीवन लय पर आ जाएगा।

नमक महीन मंगाइए, अरु सरसों का तेल।
नित्य मलें रीसन मिटे, छूट जाय सब मैल।।

जरूरत है मिथ्या दृष्टिकोण दूर करने की

○ प्रवर्तिनी साध्वी मंजुलाश्री

नैतिक आंदोलनों की आज जितनी उपयोगिता है, उतनी शायद पहले कभी नहीं रही। हर वस्तु की उपयोगिता समय सापेक्ष होती है। नीको पे फीका लगे, बिन अवसर की बात असमय में अच्छी से अच्छी वस्तु की कोई कीमत नहीं होती। भोजन कितना प्रिय होता है, इसका अनुभव भूखे से पूछें। प्यास से ही पानी, का मूल्य है।

पहले मनुष्य पाप नहीं करता था, ऐसी बात नहीं है। सदा पाप था, अब भी है। मनुष्य झूठ पहले भी बोलता था। चोर सतयुग में होते थे। सदा से अच्छाइयां और बुराइयां दोनों थीं और भविष्य में रहेंगी। हां कभी-कभी बुराईयों को आधिक्य होता है। दुर्भाग्य से आज यह स्थिति बनी है। निश्चय ही यह चितनीय स्थित है। पर इससे अधिक गंभीर बात यह है कि आज का मनुष्य यह कहने लगा है सत्य से काम नहीं चल सकता।

शराब पीना निश्चित ही एक बुराई है, पर शराब जैसी चीज की विशेषता गाई जाए, सरे बाजार यह कहा जाए कि शराब पीना अच्छा है, इससे दिमाग तनाव मुक्त स्थिर रहता है, यह तो भयंकर बुराई है, बल्कि सबसे बड़ी बुराई है।

मिथ्या दर्शन शल्य सबसे बड़ा पाप माना गया है। मिथ्या दर्शन अर्थात विपरीत श्रद्धा, मिथ्यात्व, संदेह, अनास्था, दृष्टि विपर्यय चश्मा अगर पीला हो तो दुनिया की समग्र सफेद वस्तुएं पीली नजर आएंगी। श्रद्धा के अभाव से बड़े से बड़ा, अच्छे से अच्छा तत्व निकम्मा ठहरेगा। मनुष्य बुराई करता है, यह उसकी कमजोरी है, बुराई को अच्छा मानना, इसका प्रचार करना तो

बहुत बुरा है, बल्कि सर्वाधिक बुरा है। बुराई को अच्छा मानकर चलने वाला उसे छोड नहीं सकता। इसके विपरीत व्यक्ति बुराई करता है, किन्तु उसे बुरा मानता है, तो शायद एक दिन ऐसा आएगा उसे बुराई से घृणा हो जाएगी और वह उसे छोड़ देगा। बुरे को अच्छा मानकर चलने वाला उसे छोड़ेगा भी क्यों। इसलिए मिथ्यात्व सब पापों की जड़ है, नीव है और मूलभूत कारण है। आज लोगों की यह जो मिथ्या आस्था बन रही है सत्य से काम नहीं चल सकता, एक दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति है।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है- बिना सम्यक दर्शन के ज्ञान नहीं होता, बिना सम्यक ज्ञान के चरित्र नहीं होता, बिना चरित्र के मुक्ति नहीं बिना बंधन मुक्ति के निर्वाण नहीं होता।

सम्यक दर्शन सब गुणों का मूल है। इसके विपरीत मिथ्या दर्शन सब अवगुणों का बीज है। कहा गया है नास्तिकों वेदनिन्दकः। परन्तु मैं तो कहूंगी, नास्तिक वह है जो यह कहे कि सत्य से काम नहीं चलता बल्कि इससे भी आगे यह कहूंगी कि जो श्रद्धाविहीन होकर चलता है वह महानास्तिक है। आज के लागों की दृष्टिकोण विपरीत है। जब वह त्यागप्रधान होना चाहिए था, वहां वह भोग प्रधान है। ऐसी स्थिति में ऐसे आन्दोलनों को बल देना आवश्यक है। जो मनुष्य के दृष्टि विपर्यास को मिटाकर उसे सम्यक दृष्टि प्रदान करें।

असचादांर से एकत्रित की गई सम्पत्ति के उपभोगी धनवान से क्या वह दरिद्री कहीं अच्छा नहीं है जो कम से कम आवश्यकता रखता है। कम से कम संग्रह करता है। उस सहज दुबले-पतले आदमी से क्या वह स्थूलकाय आदमी अच्छा है जो रोग के कारण मोटा बना है। उसे देखकर यदि कोई ऐसा समझे कि यह कितना मोटा-ताजा कितना हृष्ट-पुष्ट है तो क्या आपको उसकी बुद्धि पर तरस नही आएगा। क्या आप उस लोथवाले मोटे-ताजे शरीर को पसंद करेंगे अगर नहीं तो मैं पूछना चाहती हूं आज आपका यह जो कहना है कि धन सब कुछ है, अर्थ सब समस्याओं का हल है, कहां तक ठीक है। आप कहेंगे, भूखे भजन न होई गोपाला। आखिर भूखे को अन्न चाहिए। वह क्या करे इस गुणों का। मैं मानती हूं यद्यपि गरीबी के कारण अनेक समस्याएं पैदा होती हैं, तथापि इसे मूल समस्या नही माना जा सकता। मूल्य संकट आस्था का है। कि यथार्थ श्रद्धा को पुनः प्रतिस्थापित करने के लिए एक वेगवान प्रयत्न किए जाएं।

हंस अकेला

{उपन्यास-शैली में आचार्यश्री रूपचन्द्र की जीवन-गाथा}

○ डॉ. विनीता गुप्ता

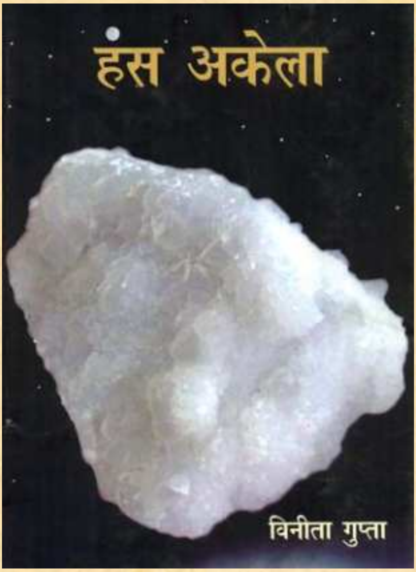

गतांक से आगे-

अलीगढ़, कानपुर, प्रयागराज होते हुए जब मुनि जी काशी पहुँचे, तब गर्मी का मौसम अपने चरम पर था। चारों दिशाएं भट्टी में सुलगती लगती थीं। ऐसे में दिन के समय पदयात्रा करना आसान नहीं था। सुबह दस बजे तक मुनि जी काशी पहुँच गए थे, लेकिन गंगा का तमाम जल भी ताप को कम नहीं कर पा रहा था। मुनि जी सीधे अस्सी घाट पहुँचे। बनारस के घाटों की खास बात है कि सारे शहर के समाचार वहां मिल जाते हैं। वहीं मुनि जी को पता लगा कि तंत्र-विज्ञान के महापंडित श्री गोपीनाथ कविराज मृत्यु शय्या पर अंतिम साँसें गिन रहे हैं। कविराज के बारे में प्रसिद्ध था कि तंत्र-विज्ञान में अपने युग के शिखर पुरुष, सौर तंत्र-विज्ञान के सिद्धहस्त योगी स्वामी विशुद्धानन्द ने अपनी यौगिक विभूतियों के उत्तराधिकारी के रूप में उनका का चयन किया था। तंत्र-विज्ञान पर लिखे उनके ग्रंथ अपने विषय में प्रामाणिक दस्तावेज माने जाते हैं। मुनि जी का जिज्ञासु मन उन्हें श्री कविराज जी के पास ले गया।

श्री कविराज जी उन दिनों आनंदमयी माँ के आश्रम में थे। आनंदमयी माँ जन्मजात सिद्ध योगिनी रूप में विख्यात थीं ही। नाम, यश, पूजा आदि लोकैषणाओं से दूर वे अपनी भक्ति-साधना में लीन रहती। कहा जाता है कि उन्हें जन्मजात अलौकिक सिद्धियां प्राप्त थीं। किन्तु उन सिद्धियों का प्रयोग उन्होंने आत्म-विज्ञापन के लिए कभी नहीं किया। मुनि जी वहां पहुँचे तो उन्हें मालूम नहीं था कि आनंदमयी माँ भी आश्रम में ही हैं। आश्रम में प्रवेश करते ही उनकी दृष्टि खुले प्रांगण में एक पेड़ के नीचे

सत्संग कीर्तन में बैठे कुछ लोगों पर पड़ी। उनमें बहनों की संख्या ज्यादा थी। संकीर्तन में लीन उन लोगों के बीच आनंदमयी माँ भी हैं, उन्हें इसकी कल्पना नहीं थी। सारा परिवेश इतना सादगीपूर्ण था कि अलौकिक सिद्धियों का स्वामी कोई व्यक्ति उनके बीच हो सकता है, यह सोच से परे था। जबकि मामूली बाजीगरी जानने वाले संतों-महंतों के आश्रमों का तामझाम भी देखने लायक होता है।

मुनि जी श्री कविराज के बारे में पूछताछ करते, इससे पहले ही तीन-चार बहनें कीर्तन-स्थल की ओर से उनके पास पहुँचीं। अपने अमल-धवल आभावलय के कारण उन बहनों में से एक की पहचान अलग से की जा सकती थी। वे निकट आयीं। अभिवादन के पश्चात् एक बहन ने कहा- 'आप आनंदमयी माँ हैं। आनंदमयी माँ को अचानक अपने सामने पाकर मुनि जी रोमांचित हो उठे। वे मुनि जी को एक कमरे में ले गयीं। आनंदमयी माँ ने उन्हें बिठाते हुए बड़े भावुक स्वरों में कहा-

'अनेक बार जैन संतों से मिलने की इच्छा हुई। वैसा संयोग आज तक नहीं बन पाया। आज अचानक प्रभु की कृपा हुई, जो आप यहां पधारे।' उन्होंने आगे कहा- 'लगता है पिछले किसी जन्म में मैं जैन साध्वी रही हूं। शायद यही कारण रहा कि बचपन में एक बार मेरे मन में केश-लोच की तीव्र इच्छा हुई। मैंने अपने सिर के सारे बाल एक-एक करके अपने हाथों से ही नोच लिए।'

मुनि जी हतप्रभ थे। माँ आनंदमयी की सादगी और सरलता देख बोले- 'आपकी सरलता-विनम्रता और निरहंकारिता अद्भुत है। हमने आपकी साधना की लब्धियों और उपलब्धियों के बारे में बहुत कुछ सुना है। किन्तु आप जैसी सादगी और अकिंचनता बड़े-बड़े संत महात्माओं में भी दुर्लभ है।'

'आप ऐसा न कहें' मुनि जी के वार्त्ता-सूत्र को उन्होंने अपने हाथ में लेते हुए कहा- 'मैं तो कुछ भी नहीं हूं। न ही मैंने किसी विशेष साधना-विधि का अभ्यास किया है। बस जब भी उसका नाम आता है, मैं अपनी सारी सुध-बुध भूल कर उसी में खो जाती हूं। फिर मुझे बाहरी दुनिया की कोई खोज-खबर नहीं रहती। बचपन में तो जब-तब समाधि लगाती थी। अब तो चौबीसों घण्टों उसी में खोयी रहती हूं।'

'यह तो साधना की बहुत ऊंची अवस्था है।' मुनि जी बोले। 'यह मैं नहीं जानती।' मां बोलीं,- 'जो है, मालिक की कृपा है, उसी का प्रसाद है। मैंने इसे पाने के लिए कुछ नहीं किया। जो है, सब उसी का दिया है। मैं हूं ही नहीं, बस एक वही है।'

मुनि जी बोले- 'जितनी भी

साधना-विधियां हैं, वे सब इसी भाव-समाधि को उपलब्ध होने के लिए हैं। आप सौभाग्यशालिनी हैं, जो यह भावावस्था आपको अनायास उपलब्ध हो गई। लगता है पिछले जन्मों की साधना इस जन्म में आपको इस पराकाष्ठा तक ले आई है। देखा तो यह गया है बड़े-बड़े योगी और तपस्वी भी इस ऊँचाई तक बड़ी मुश्किल से पहुँच पाते हैं।'

'आपने तपस्वी शब्द का जो प्रयोग किया है, उसके बारे में मेरे मन में एक प्रश्न है'- वे बोलीं- 'समाधि-अवस्था को पाने के लिए क्या तपस्या जरूरी है? यद्यपि भगवान महावीर आदि महापुरुषों की साधना के साथ-साथ लम्बी-लम्बी तपस्याओं का वर्णन मिलता है। किन्तु भक्ति के लिए भूखे रहना क्यों आवश्यक है? जबकि मुझे लगता है कि भूखे रहने से भक्ति में बाधा पहुँचती है।'

अपनी बात को जारी रखते हुए उन्होंने आगे कहा- 'अन्नं वै प्राणाः अन्न तो प्राण है। शरीर में अन्न न पहुँचने पर इन्द्रिय-शक्तियां कमजोर हो जाएंगी। उठना-बैठना मुश्किल हो जाएगा। भूख सताने पर भक्ति में मन एकाग्र हो नहीं पाएगा। फिर जैन धर्म में तपस्या पर इतना जोर दिया गया है, इसका कारण क्या है?'

प्रश्न मुनि जी के सामने था। उन्होंने उत्तर दिया-

'जैन धर्म में तपस्या पर अवश्य बल दिया गया है, किन्तु तपस्या का अर्थ भूखों मरना अथवा शरीर को सताना नहीं है। शरीर को दुःख देने के लिए होने वाली तपस्या-साधना का भगवान महावीर ने खंडन किया है। फिर तप-आचरण का विधान इसलिए है जिससे देहासक्ति क्षीण हो जाए। अगर देह में आसक्ति है तो भक्ति भी मोह में बदल जाती है।

हमारी चित्त-वृत्ति यदि शरीर और इंद्रियों से ऊपर नहीं उठ पायी है तो वह प्रभु की भक्ति के समय भी संसार-वासना से उबर नहीं पाएगी। वह भक्ति के अंत में आशीर्वाद के रूप में संतान-धन, स्वास्थ्य या संकट-निवारण का वरदान माँग लेगी। इसलिए जैन धर्म में देह और विषयों के प्रति चित्त में ठहरी आसक्ति को तोड़ने के लिए तपस्या का विधान है। किन्तु यहां यह समझना जरूरी है कि महावीर ने उसी तप का समर्थन किया जो देहासक्ति को तोड़ने में सहयोगी हो, जो आपको ध्यान-समाधि की गहराइयों में उतारने में सहायता करे। तप-साधना का मार्गदर्शन करते हुए भगवान महावीर कहते हैं- श्रमणो, तपश्चर्या की कठिन राह पर कदम उठाने से पहले अपने शरीर-बल को तोलो। प्राण-बल को तोलो। अपने संकल्प की दृढ़ता को जाँचो-परखो। अपने आरोग्य को

देखो। इसके साथ ही क्षेत्र और काल की अनुकूलता-प्रतिकूलता का ध्यान करो। इन सब पहलुओं पर सम्यक् विचार करके अपने को नियोजित करो। इस विवेक दृष्टि के पीछे का रहस्य यही है कि भगवान महावीर न भूखों मरने के समर्थन में हैं, न शरीर को सताने में। वे केवल उस तप आचरण के समर्थन में हैं जो देहासक्ति को क्षीण करे। देहासक्ति टूटने पर ही भक्ति, ज्ञान और आचरण सम्यक् हो सकेंगे। जैन धर्म का ऐसा अभिमत है।'

आनंदमयी मां ने कहा- 'यह सही है कि देहासक्ति टूटे बिना भक्ति निष्काम नहीं रह पाती। किन्तु क्या भूखे रहने से- तपस्या से वह आसक्ति सर्वथा क्षीण हो जाती है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि तपस्या से इन्द्रिय-दुर्बलता के कारण वह देहासक्ति क्षीण लगती है, पर क्षीण नहीं होती। वह एक बार सुषुप्त अवश्य हो जाती है। किन्तु ज्यों ही तपस्या पूर्ण हुई, शरीर को अपनी खुराक मिली, इंद्रियां पुनः सबल हुईं कि देह और विषयासक्ति भी प्रबल हो जाती है?'

मुनि जी आनंदमयी माँ की जिज्ञासा शांत करने का प्रयास कर रहे थे- 'यदि आसक्ति क्षीण नहीं हुई तो वह अवसर पाकर पुनः प्रबल हो सकती है। किन्तु जैन चिंतन यह है कि देहासक्ति और चित्त वासना जब दुर्बल होती है, वह क्षण आत्मानुभव में उतरने का स्वर्णिम अवसर होता है। एक बार आत्मानुभव में उतर गए कि सारी आसक्तियां और वासनाएं स्वयं क्षीण हो जाती हैं। अगर आत्मानुभव में नहीं उतर पायें तो सुषुप्त वासनाओं के जागने की संभावना बनी रहती है। उस स्थिति में आसक्ति और वासना को तोड़ने का प्रयास पुनः करना पड़ता है। किन्तु आत्मानुभव में उतरने के अनुरूप चित्त-भूमि के निर्माण में तपस्या एक महत्त्वपूर्ण साधना है, ऐसा जैन अभिमत है।'

'यह भक्ति-मार्ग से भी तो संभव है।', वे बोलीं- 'भक्ति की पराकाष्ठा में वह प्रभु के साथ एकाकार हो जाती है। तब देहासक्ति और वासनाएं स्वयं लीन हो जाती हैं।'

'भक्ति-मार्ग से देहासक्ति क्षीण नहीं होती, जैन दर्शन का ऐसा अभिमत नहीं है,'- मुनि जी बोले- 'भक्ति, ज्ञान, कर्म एवं तप किसी भी मार्ग से समाधि-अनुभव तक पहुँचा जा सकता है। वह तभी संभव है, तब वासनाएं क्षीण हों, चित्त निर्मल हो, देहासक्ति निर्बल हो। ऐसा न होने पर भक्ति का मोह में परिणत होने का खतरा रहता है, ज्ञान कोरा तोता-रटंत बन जाता है। आचरण पाखंड बन जाता है। तपस्या केवल देह-दमन और प्रदर्शन बनकर रह जाती है। मैं समझता हूं, इस निष्कर्ष में किसी का मतभेद नहीं हो सकता।'

-क्रमशः

जीवन में विजेता होने के लिए मेडल नहीं करुणा व सेवाभाव अधिक ज़रूरी है

O सीताराम गुप्ता

हम सबके कुछ सपने होते हैं जिन्हें साकार करने के लिए हम कोई कसर नहीं रख छोड़ते। हम जैसे-जैसे अपने लक्ष्य को पाने के लिए आगे बढ़ते हैं हमारे प्रयास और अधिक तेज हो जाते हैं। लक्ष्य के अत्यधिक निकट पहुंचने पर हमें अपने लक्ष्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता। यह स्वाभाविक ही है। सफलता का मूल मंत्र भी यही है। ओलंपिक खेलों को ही लीजिए। दशकों तक कठिन परिश्रम करने के बाद ही कोई खिलाड़ी पदक हासिल करने के लिए आगे आ पाता है। वर्ष 1988 में सियोल में आयोजित ओलंपिक मुकाबलों में नौकायन की एकल प्रतिस्पर्धा में भाग लेने के लिए कनाडा के लॉरेंस लेम्यूक्स एक दशक से भी अधिक समय से कठोर प्रषिक्षण ले रहे थे।

उनका सपना साकार होने में बस थोड़ा सा ही समय शेष रह गया था। लॉरेंस लेम्यूक्स के गोल्ड मेडल जीतने की प्रबल संभावना थी लेकिन मौसम खराब होने के कारण एक चूक के कारण वो दूसरे स्थान पर आ गए। वे उत्साह के साथ आगे बढ़ते रहे। जब लॉरेंस लेम्यूक्स तेज़ी से अपनी नाव चलाते हुए सही दिशा में आगे बढ़ रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक दूसरी प्रतिस्पर्धा के नाविकों की नाव बीच समुद्र में उलटी पड़ी है। एक नाविक किसी तरह नाव से लटका हुआ था जबकि दूसरा समुद्र में बह रहा था। दोनों बुरी तरह से घायल थे। लॉरेंस लेम्यूक्स ने अनुमान लगाया कि सुरक्षा नौका अथवा बचाव दल के आने में देर लगेगी और यदि तत्क्षण सहायता नहीं मिली तो इनका बचना असंभव होगा।

लॉरेंस लेम्यूक्स के सामने दो विकल्प थे। मेडल पाने का उनका लक्ष्य उनके सामने था अतः उनका पहला विकल्प था इस दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों को नज़रंदाज़ करके अपना पूरा ध्यान केवल अपने लक्ष्य को पाने के लिए अपनी नौका और रेस पर केंद्रित करना और दूसरा विकल्प था दुर्घटनाग्रस्त नाव के चालकों की मदद करना। लॉरेंस लेम्यूक्स ने बिना किसी हिचकिचाहट के फ़ौरन अपनी नाव उस दिशा में मोड़ दी जिधर उलटी हुई दुर्घटनाग्रस्त नाव समुद्र की विकराल लहरों में हिचकोले खा रही थी। लेम्यूक्स ने बिना देर किए दोनों घायल नाविकों को एक एक करके अपनी नाव में खींच लिया और तब तक वहीं इंतज़ार किया जब तक कि कोरिया की नौसेना आकर उन्हें सुरक्षित निकाल नहीं ले गई।

प्रश्न उठता है कि लॉरेंस लेम्यूक्स ने अपने जीवन की एकमात्र महान उपलब्धि को अपने हाथ से यूँ ही क्यों फिसल जाने दिया? इसका सीधा सा उत्तर है लॉरेंस लेम्यूक्स के उदात्त जीवन मूल्य। लॉरेंस लेम्यूक्स के जीवन मूल्य इस तथ्य पर निर्भर नहीं थे कि विजेता होने के लिए किसी भी कीमत पर ओलंपिक मेडल प्राप्त करना ही एकमात्र विकल्प है। लॉरेंस लेम्यूक्स को प्रतिस्पर्धा में तो कोई पदक नहीं मिल सका लेकिन अंतर्राष्ट्रीय ओलंपिक कमेटी द्वारा लॉरेंस लेम्यूक्स को उनके साहस, आत्म-त्याग और खेल भावना के लिए पियरे द कूबर्तिन पदक प्रदान किया जो अत्यंत सम्मान का सूचक है। लॉरेंस लेम्यूक्स की करुणा की भावना व वास्तविक मदद ने उसे अपने देश के लोगों के दिलों का ही नहीं दुनिया के लोगों के दिलों का सम्राट बना दिया।

सच किसी का जीवन बचाने से अच्छी प्रतिस्पर्धा हो ही नहीं सकती। बाद में ये पूछने पर कि क्या ओलंपिक मेडल खोने पर उन्हें कभी अफसोस भी हुआ तो लॉरेंस लेम्यूक्स ने कहा कि यदि उनके जीवन में दोबारा ऐसी स्थिति आती है तो वे हर हाल में उसे दोहराना पसंद करेंगे। हमारे जीवन में भौतिक लक्ष्य भी हों और उन्हें पाने के लिए सदैव प्रयासरत रहें लेकिन जीवन में कुछ दैवी लक्ष्य भी होते हैं। उनकी ओर ध्यान देकर ही हम वास्तविक विजेता बन सकते हैं। वास्तविक विकास के लिए दैवी लक्ष्यों की उपेक्षा की ही नहीं जा सकती। यह तभी संभव है जब हम दूसरों के मस्तिष्क में स्थान बनाने की अपेक्षा उनके हृदय में स्थान बनाने का प्रयास करें। जिसने ये जान-समझ लिया वही सबसे बड़ा विजेता है।

ए.डी.-106-सी,
पीतमपुरा, दिल्ली-110034

धर्म और संस्कृत की सेवा के लिये अद्भुत त्याग

पण्डित श्रीरामजी महाराज संस्कृत के महान् धुरन्धर विद्वान् थे। आपके पूर्वजों की यह प्रतिज्ञा थी कि हम न तो संस्कृत को छोड़कर एक शब्द दूसरी भाषा का बोलेंगे और न सनातन धर्म को छोड़कर किसी भी मत-मतान्तर के चक्कर में फँसेंगे। मुट्ठी-मुट्ठी आटा माँगकर पेट भरना पड़े तो भी चिन्ता नहीं, भिखारी बनकर भी देववाणी संस्कृत की, वेद-शास्त्रों की और सनातन धर्म की रक्षा करेंगे। इस प्रतिज्ञा का पालन करते हुए पं. श्रीरामजी महाराज अपनी धर्मपत्नी तथा बाल-बच्चों को लेकर श्री गंगाजी के किनारे-किनारे विचरा करते थे। पाँच-सात मील चलकर सारा परिवार गाँव से बाहर किसी देव मन्दिर में या वृक्ष के नीचे ठहर जाता। ये गाँव में जाकर आटा माँग लेते और रूखा-सूखा जैसा होता, अपने हाथों से बनाकर भोजन पा लेते। अगले दिन फिर श्री गंगा किनारे आगे बढ़ जाते। अवकाश के समय बच्चों को संस्कृत के ग्रन्थ पढ़ाते जाते तथा स्तोत्र कण्ठ कराते।

एक बार श्रीरामजी महाराज घूमते-घामते एक राजा की रियासत में पहुँच गये और गाँव से बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहर गये। अकस्मात् राजपुरोहित उधर आ निकले। उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण परिवार वृक्ष के नीचे ठहरा हुआ है। माथे पर तिलक, गले में यज्ञोपवीत, सिर पर लम्बी चोटी, ऋषि-मण्डली-सी प्रतीत हो रही है। पास आकर देखा तो रोटी बनायी जा रही है। छोटे बच्चे तथा ब्राह्मणी सभी संस्कृत में बोल रहे हैं। हिन्दी का एक अक्षर न तो समझते हैं, न बोलते हैं। राजपुरोहित को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजपुरोहित जी ने पं. श्रीरामजी महाराज से संस्कृत में बातें कीं। उनको यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि आज से नहीं, सैकड़ों वर्षों से इनके पूर्वज संस्कृत में बोलते चले आ रहे हैं और संस्कृत की, धर्म की तथा वेदशास्त्रों की रक्षा के लिये ही भिखारी बने मारे-मारे डोल रहे हैं। राजपुरोहित से यह वृत्तान्त सुनकर राजा साहब चकित हो गये। उन्होंने पुरोहित से कहा कि ऐसे ऋषि-परिवार को महलों में बुलाया जाय और मुझे उनके दर्शनपूजन करने का सौभाग्य प्राप्त कराया जाय। राजा साहब को साथ लेकर राजपुरोहित उनके पास आये और राजमहल में पधारने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की। पण्डितजी

ने कहा कि हमें राजाओं के महलों में जाकर क्या करना है। हम तो श्रीगंगा किनारे विचरने वाले भिक्षुक ब्राह्मण हैं। राजा साहब के बहुत प्रार्थना करने पर आपने अगले दिन सपरिवार राजमहल में जाना स्वीकार कर लिया। अगले दिन यह ऋषि-परिवार राजमहल पहुँचा। बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ राजा साहब ने स्वयं अपनी रानीसहित सोने के पात्रो में ब्राह्मण देवता, ब्राह्मणी तथा बच्चों के चरण धोकर पूजन किया, आरती उतारी और चाँदी के थालों में सोने की अशर्फियाँ और हजारों रुपयों के बढ़िया-बढ़िया दुशाले लाकर सामने रख दिये। सबने यह देखा कि उस ब्राह्मण-परिवार ने उन अशर्फियों और दुशालों की ओर ताकातक नहीं। जब स्वयं राजा साहब ने भेंट स्वीकार करने के लिये करबद्ध प्रार्थना की, तब पण्डित जी ने धर्मपत्नी की ओर देखकर पूछा कि क्या आज के लिये आटा है?' ब्राह्मणी ने कहा 'नहीं तो।' आपने राजा साहब से कहा कि 'बस, आज के लिये आटा चाहिये। ये अशर्फियों के थाल और दुशाले मुझे नहीं चाहिये।'

राजा साहब-महाराज! मैं क्षत्रिय हूँ, दे चुका, स्वीकार कीजिये।

पण्डितजी- राजा साहब! हम ब्राह्मणों का धन तो तप है। इसी में हमारी शोभा है, वह हमारे पास है। आप क्षत्रिय हैं, हमारे तप की रक्षा कीजिये।

राजा साहब- क्या यह उचित होगा कि एक क्षत्रिय दिया हुआ दान वापस ले ले। क्या इससे सनातन- धर्म को क्षति नहीं पहुँचेगी?

'पण्डितजी- अच्छा इसे हमने ले लिया, अब इसे हमारी ओर से अपने राजपुरोहित को दे दीजिये। हमारे और आपके दोनों के धर्म की रक्षा हो गयी।

सबने देखा कि ब्राह्मण-परिवार एक सेर आटा लेकर और सोने की अशर्फियों से भरे चाँदी के थाल, दुशालों को ठुकराकर जंगल में चले जा रहे हैं और फिर किसी वृक्ष के नीचे बैठकर वेदपाठ करने में संलग्न हैं।

-प्रस्तुति : मनीष जैन

दु:ख

• दु:ख में गहराई है। सुख में गहराई नहीं होती। इसलिए जो लोग दु:ख से गुजरते हैं, उनकी आंखों में, उनकी जिन्दगी में एक गहनता होती है। दु:ख दु:ख ही नहीं देता, मांजता भी है। **-ओशो (रजनीश)**

• आपत्ति 'मानव' बनाती है और सम्पत्ति 'राक्षस'। **-विकटर ह्यूगो**

भारतीय संस्कृति के अनुपम रत्न गोस्वामी तुलसीदास जी

○ महेश चन्द्र शर्मा

आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व ऐसा समय था जब भारत में शैक्षिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक रूप से जीवन अंधकारमय हो गया था। हमारे सब धर्मग्रंथ संस्कृत भाषा में थे जो जनसाधारण की भाषा नहीं थी। इस कारण धर्मग्रंथ में क्या लिखा है यह वे नहीं जानते थे। इस कारण समाज में अनेक अंधविश्वास और कुप्रथाएं जड़ जमा रही थी। धर्म का सच्चा और कल्याणकारी स्वरूप लोगों की आंखों से ओझल हो रहा था। विदेशी शासन के कारण युगों से चली आ रही पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाएं टूट रही थी। बच्चे अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्य नहीं निभाते थे। धर्म के नाम पर पाखण्ड हो रहा था। विधर्मी अपना धर्म फैला रहे थे। समाज पर अत्याचार हो रहे थे और समाज में निराशा

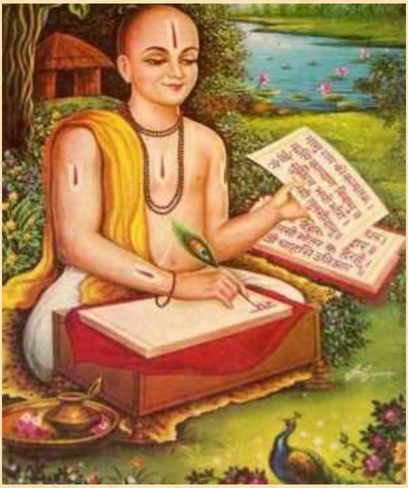

घर कर रही थी। वैष्णवों व शैवों में मनमुटाव बढ़ रहा था। दोनों अपने-अपने इष्टदेव को बड़ा बता रहे थे। इसका मूलकारण अज्ञान ही था। समाज में छुआछूत की भावना फैलने लगी थी। नाथ पंथियों और कुछ निर्गुण संतों ने इन परिस्थितियों में ईश्वर को अपने भीतर ही खोजने का उपदेश दिया। उनके उपदेश के कारण ईश्वर की प्राप्ति बड़ी रहस्यमय और गोपनीय जैसी बन रही थी। समाज की इस चिंताजनक स्थिति पर गोस्वामी जी ने गंभीर चिंतन किया तभी उनके मन में यह प्रेरणा जागी कि जन भाषा में रामकथा को लिखा जाये। जो संपूर्ण समाज के लिये रसायन बना और धर्म के प्रति आस्था जागृत हुई।

गोस्वामी तुलसीदास ऐसे समय में भारतीय संस्कृति के अनुपम रत्न रूपी एक

महाकवि के रूप में उभरे जिनकी बातों को अनेक सम्प्रदायों ने स्वीकार किया है गोस्वामी तुलसीदास जी ने उन्हीं के साथ सामंजस्य स्थापित किया इसलिए उनके दार्शनिक विचारों में संकीर्णता नहीं दिखाई दी। वास्तव में तुलसी दास ने प्राचीन शास्त्रों में उपलब्ध सामग्री की सहायता से जीव, ब्रह्मा, इनके पारस्परिक सम्बन्ध, माया और ब्रह्म इत्यादि के विषय में चिन्तन किया है और फिर उनका स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत किया।

ब्रह्म-तुलसी के समय में शैव और वैष्णव इन दोनों सम्प्रदायों में बड़ा विरोध था। तुलसीदास ने उन विरोधों का खण्डन करते हुए कहा कि राम और शिव दोनों श्रेष्ठ हैं और दोनों ही एक-दूसरे का सम्मान करते हैं।

ईश्वर ही सर्वशक्तिमान है और उसी की कृपा से असम्भव कार्य भी सम्भव होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश- इन तीनों को तुलसीदास जी समान मानते हैं। इतना ही नहीं उनके मतानुसार दशरथ-पुत्र राम और निर्गुण राम में कोई अंतर नहीं। इनके बीच भेदभाव स्थापित करने वाले अज्ञानी और पाखण्डी हैं **"पाखण्डी हरि पद विमुख, जानहिं झूठ न सांच।"**

गोस्वामी जी ने माया के दो रूप लिये- एक विद्या माया और दूसरी अविद्या माया, विद्या माया सर्जक है तो अविद्या माया विनाशक। माया का स्पष्टीकरण करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं- कपट, पाखण्ड, काम, क्रोध, मद, लोभ आदि अविद्या माया की सेना हैं। इनके प्रभाव से ऋषि-मुनि, यहां तक कि नारद भी नहीं बच सके। भोले-भाले जीव तो इसके चंगुल में बड़ी सरलतापूर्वक आ जाते हैं। अभिमान भी अविद्या का ही एक वित रूप है जो मनुष्य में मद जागृत करता है। इस अविद्या माया से केवल राम ही बचा सकते हैं- माधव अस तुम्हारि यह माया। **"कर उपाय पचि गरिय तरिय नहिं जब लगि करहूं न दाया।"**

भक्ति-माया के बन्धन से मुक्त होने के जो विभिन्न साधन- जप, तप, ज्ञान, वैराग्य, कर्म, उपासना आदि बताये गये हैं, उनमें सर्वप्रमुख ज्ञान और भक्ति ही है। ज्ञान जहां कठिन है, वहीं भक्ति-मार्ग सर्वजन-सुलभ है। भक्ति के पांच भाव-शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य और माधुर्य माने गये हैं लेकिन तुलसीदास जी दास्यभाव को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। उनका कहना है कि- 'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।'

सर्वजन-सुलभ होते हुए भी यह मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि भक्ति में मन के रम जाने में भी ईश्वर की कृपा आवश्यक है। यदि ईश्वर की कृपा नहीं होगी तो जीव इस संसार-सागर में भटक जाएगा। इसलिए वे लिखते कि-

मेरो मन हरजू हठ न तजै।
हॅा हॅारयो करि जनत विविध
विधि नेकु न चढ़ लजै।

तुलसीदास तब कोई स्वबस जब प्रेरक प्रभु बरजै।

वैसे पवित्र मन से ईश्वर की आराधना करने पर ईश्वर कृपा की प्राप्ति होती है। तुलसी की दास्य-भावना के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण विनय- पत्रिका में दर्शनीय हैं।

जीव और जगत्- जीव को गोस्वामी जी मन, प्राण और बुद्धि से प्रथम माना है। वह पूर्णतः एवं चैतन्य है। विकार वस्तुओं के सम्पर्क में आने के कारण निर्विकार जीवन भी विकार-ग्रस्त बन जाता है। इसलिए वह माया के इशारे पर नाचता है। वह ईश्वर का साथी भी है- ब्रह्मजीव सम सहज संघाती। लेकिन जीव कभी ब्रह्म नहीं बन सकता। उसे ईश्वर के द्वारा संचालित होना पड़ता है। कर्मों के द्वारा उसे संसार-सागर में आवागमन से मुक्ति मिल सकती है। अपने कर्मों के द्वारा उसे संसार-सागर में आवागमन से मुक्ति मिल सकती है। अपने कर्मों का फल ही उसे भुगतना पड़ता है।

धर्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति और माया आदि मान्यताओं को लेकर तुलसीदास ने हरि प्राप्ति के साधनों पर प्रकाश डाला है। इनके अनुसार दास्यभक्ति ही राम की प्राप्ति का सर्वोचित माध्यम है। राम और धर्म के प्रति आस्था प्रकट करने के बाद भी गोस्वामी जी की दृष्टि जनकल्याणी और विश्वव्यापी है। अतः यह कहना उचित होगा कि **"सर्वे भवन्तु सुखिनः"** ही उनकी विचारधारा थी और राम की भक्ति ही उनकी दार्शनिक आस्था थी।

क्रोधाग्नि पर प्रेम का पानी

एक बार ज्ञानदेव महाराज को क्रोध आ गया तो उनकी बहन मुक्ताई ने कहा, 'ताटी उघड़ा ज्ञानेश्वरा,' (ज्ञानेश्वर महाराज, आप अपना अकड़ना कम कीजिए)।

उन्होंने कहा- 'विश्व रागे झाले बहन, संत मुखे बहावे पानी।' (यदि दुनिया आग-बबूला हो उठे तो संतों को चाहिए कि स्वयं पानी बन जायें)।

अग्नि को पानी बुझा देता है। अगर पानी में आग डाल दे तो क्या वह पानी को जला देगी या खुद बुझ जायेगी? संतों का स्वभाव भी ऐसा होना चाहिए। कोई कितना ही क्रोधित क्यों न हो, उन्हें शांत रहना चाहिए।

-प्रस्तुति : नमन जैन

राजकुमारी सुदर्शना

समुद्र की उत्ताल तरंगों से घिरा सिंहल द्वीप अपने सौंदर्य से सबको अनायास आकर्षित कर लेता था। उत्तुंग वृक्षों से आच्छादित उस द्वीप के मध्य श्रीनगर अपनी आभा बिखेर रहा था। सिंहल की समृद्धि का संकेत उसी विशाल अट्टालिकाएँ देती थीं। नागरिकों के प्रसन्न चेहरे, बच्चों की किलकारियाँ, नारियों की सुरीली स्वर-लहरियाँ उनकी आंतरिक शांति और सुव्यवस्था को सूचित करती थीं। श्रीनगर सचमुच लक्ष्मी का क्रीड़ास्थल था। राजा चंद्रगुप्त का शासन सबके लिए सुखद था। उनकी धर्मपत्नी महारानी चंद्रलेखा ने एक पुत्री को जन्म दिया। वह साक्षात् लक्ष्मी की प्रतिकृति थी। माँ ऐसी स्वरूपवती कन्या को प्राप्त कर आहलादित हो रही थी। पुत्री देखने में सुन्दर और कमनीय थी। पिता प्यार से उसे सुदर्शना के नाम से पुकारने लगा। पाँच धाय माताएँ लाड़ली बेटी के लालन-पालन के लिए नियुक्त की गईं।

राजकुमारी सुदर्शना बाल्यावस्था पार कर किशोरावस्था में पहुँची। सौंदर्य उसके अंग-अंग से प्रस्फुटित हो रहा था। महारानी ने वस्त्राभूषण से सज्जित कर पुत्री को राज्य सभा में भेजा। महाराजा चंद्रगुप्त ने जब सुदर्शना को देखा तो वह उसके योग्यवर की चिंता में निमग्न हो गया। विधि का विचित्र संयोग था। उसी समय एक व्यापारी भरूंच नगर से विविध प्रकार की सामग्री से परिपूर्ण जहाजों के साथ सिंहलद्वीप में पहुँचा। उसका नाम ऋषभदत्त था। राजा को भेंट स्वरूप कुछ वस्तुएँ देने वह राज्यसभा में पहुँचा। बातचीत करते समय उसे अकस्मात छींक आ गई और छींक के साथ उसके मुँह से अनायास ''णमो अरहंताण'' शब्द प्रस्फुटित हुआ।

राजकुमारी सुदर्शना के कानों से जब ''णमो अरहंताण'' की ध्वनि टकराई तो उसके शरीर में रोमांच हुआ। वह अचानक तंद्रा में चली गई। उसकी चिंतन की धारा ''णमो अरहंताण'' के ईद-गिर्द घूमने लगी। राजकुमारी अपने पूर्व भव का साक्षात करने लगी।

बाण से घायल एक पक्षी अर्द्धध-मूरच्छित पड़ा है। उसके सन्निकट एक मुनि महाराज खड़े-खड़े नमस्कार महामंत्र के प्रथम पद ''णमो अरहंताण'', ''णमो अरहंताण'' का जाप कर रहे थे। पक्षी भी ''णमो अरहंताण'' की ध्वनि में निमग्न है।

स्मृति की धारा अतीत की ओर पुनः बहने लगी। एक समड़ी बड़ के कोटर में अपने बच्चों के मध्य भूखी बिलबिला रही है। बीस दिनों से वर्षा की तेज धाराएँ

आकाश और धरती को एकाकार कर रही हैं। नर्मदा नदी के दूर-दूर तक फैले पानी ने समुद्र का रूप ले लिया है। समड़ी विवश हो पेड़ के कोटर में शांत बैठी वर्षा के रुकने की प्रतीक्षा कर रही है। अंततः वर्षा रुकती है और वह निरीह पक्षी बीस दिन की क्षुधा को शांत करने के लिए भोजन की तलाश में बाहर निकलती है। सहसा एक धीवर के बाण से उसका शरीर बींध दिया जाता है। वह घायल होकर भूमि पर गिर पड़ती है। मुनि महाराज समड़ी का अंतिम समय निकट जान कर नमस्कार महामंत्र से उसके चित्त को समाहित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। संयोग से पक्षी की मूर्च्छा टूटती है। शुभ भाव, शुभ परिणाम और शुभ लेश्या के द्वारा उसका जीव मनुष्य आयुष्य का बंध कर लेता है और सिंहलद्वीप में राजकुमारी सुदर्शना के रूप में उत्पन्न होता है।

राजा चंद्रगुप्त एवं ऋषभदत्त चिन्तन करने लगे... सुदर्शना की इस मूर्च्छा का क्या उपाय किया जाए? सहसा, ठंडी हवा के उपचार से वह स्वस्थ हो गई। ऋषभदत्त की ओर संकेत करते हुये उसने कहा... भरुंच के व्यापारी। क्या नर्मदा के किनारे बसे तुम्हारे नगर के बाहर एक विशाल चैत्य वृक्ष है जहाँ कभी पेड़ के नीचे एक मुनिराज विराजते थे? क्या वह सीन अब भी सुरक्षित है? मुनि महाराज सुख-शांतिपूर्वक संयम का निर्वहन करते हैं?

राजा और ऋषभदत्त सुदर्शना के इन प्रश्नों से आश्चर्यचकित थे। राजा ने कहा... " बेटी! तूने न भरूंच शहर देखा है और न नर्मदा के किनारे के विशाल पेड़ को, तब मुनि महाराज की चर्चा कैसे कर रही हो?"

"पितृवर! आपका कथन यथार्थ है, मैं न भरूंच गई हूँ और न मैंने मुनि महाराज के दर्शन किए हैं। किन्तु जाति-स्मृति के कारण मुझे अपने पूर्व भव का स्मरण हो आया है। तब मैं एक समड़ी के रूप में उस वृक्ष के कोटर में रहती थी। किसी धीवर के बाण से मैं घायल हो गई थी। उस समय एक मुनिवर ने "णमो अरहंताण" का पाठ मुझे सुनाया था। उनके उपकार का ही परिणाम है कि मैंने राजकुमारी बनकर आपके घर में जन्म लिया है।

सुदर्शना ने आगे कहा- "पितृवर! मुनिराज के प्रति मेरे मन में अत्यन्त कृतज्ञता के भाव हैं। मैं वहाँ जाकर उनकी वन्दना और उपासना कर अपने उपकार से मुक्त होना चाहती हूँ।"

पिता ने ऋषभदत्त के साथ उचित सुरक्षा-व्यवस्था देकर भरूंच यात्रा की स्वीकृति प्रदान कर दी।

राजकुमारी सुदर्शना मुनि-दर्शन कर भाव विह्वल हो उठी। मुनिवर ने संसार की अनित्यता, भोगों की असारता और धर्म की

दुर्लभता का उपदेश दिया। सुदर्शना का चित्त जागृत हो गया। उसका मन वैराग्य से ओत-प्रोत हो गया। उसने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर लिया।

ब्रह्मचर्य वह निर्मल निर्झर है, जिससे व्यक्ति अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाकर सिद्धि के द्वार तक सहज ही पहुँच जाता है। ब्रह्मचर्य वह शक्ति है, जिससे व्यक्ति अनन्त-अनन्त जन्म से संचित संस्कार-श्रृंखलाओं का नाश कर विमुक्त बन जाता है।

राजकुमारी मंत्रराज नवकार का प्रतिदिन जप एवं ध्यान करने लगी। परमेष्ठी मंत्र की आराधना से उसका चित्त निर्मल और भावना विशुद्ध होने लगी। राजकुमारी ने वहाँ एक समड़ी-विहार का निर्माण करवाया जिसमें सैकड़ों-सैकड़ों बहिनें नमस्कार महामन्त्र का अनुष्ठान कर स्वयं के जीवन को अध्यात्म मार्ग की ओर अग्रसर करने लगीं। सुदर्शना ने दान, शील, तप एवं भावना की भी खूब आराधना की अंत में, आयुष्य सन्निकट जानकर उसने अनशन के साथ शुभ परिणामों में समाधि-मरण प्राप्त किया ।

-साध्वी वसुमती

चुटकुले

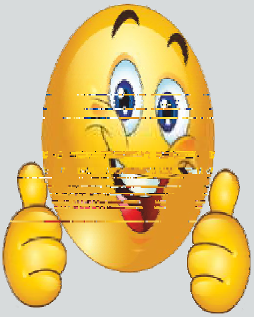

(1) मरीज- मेरा वजन कैसे कम होगा?
डॉक्टर- अपनी गर्दन को दाएं-बाएं हिलाएं।
मरीज- किस समय?
डॉक्टर- जब कोई खाने के लिए पूछे।

(2) ग्राहक- भैया, 500 रुपये के चेंज देना।
दुकानदार- ये लो।
ग्राहक- ये तो सिर्फ 130 ही हैं। बाकी के 370 कहां हैं?
दुकानदार- वे अमित शाह ले गए।

(3) इंटरनेट ने हमारे जीवन में ऐसी घुसपैठ कर दी है कि... अभी एक आदमी मेडिकल की दुकान पर 100MG की जगह 100MB की गोली मांग रहा था।

(4) पति- मेरी लॉटरी लग जाये तो क्या करोगी?
पत्नी- आधा पैसा लेके हमेशा के लिए मायके चली जाऊंगी।
पति- 100 रुपये की लगी है,
ये ले 50 और निकल जा...!!!

-प्रस्तुति : अश्वीनी तिवारी

भारतीय भाषाओं की एकात्मता समझने की जरुरत

○ डॉ. अरुण के पाण्डेय

नई शिक्षा नीति में हिंदी भाषा की राष्ट्रीय स्तर पर अनिवार्यता की संस्तुति का जिस तरह से विरोध हुआ है यह बहुत पुरानी परम्परा नहीं है और सूर्य के प्रकाश में आँख मूंदकर अँधेरे का आभास करने जैसा है। दक्षिण में हिंदी विरोध आजादी के बाद गढ़ा गया राजनीतिक मुद्दा है जिसकी प्रस्तावना पादरी रोबर्ट कोल्डवेल ने लिखी थी। पादरी रोबर्ट कोल्डवेल की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक भाषा-ज्ञान के प्रवर्तकों ने शोधादि का स्वांग रचकर यह साबित कर दिया गया कि उत्तर भारत की भाषाओँ का यूनानी, ईरानी, जर्मन और लातीनी भाषाओँ से सम्बन्ध तो है लेकिन विध्यांचल के दक्षिण में प्रचलित "उन भाषाओं" से इनका कोई सम्बन्ध नहीं, जिसकी वैयाकरणिक व्यवस्था में उत्तर से जाकर ऋषि अगस्त्य ने योगदान दिया था। अपनी पुस्तक "द्रविड़ भाषाओँ का तुलनात्मक अध्ययन" के जरिये कोल्डवेल ने तमिल लोगों में उस भावना बीज बोया कि उनकी भाषाओँ का उत्तर भाषाओँ से कोई मेल नहीं हो सकता है। वहीं जब उत्तरापथ और दक्षिणापथ की परम्पराएँ, शास्त्र, सामाजिक व्यवस्था व आराध्य देव एक ही हैं फिर उनकी भाषा में कोई अंतर्भाषिक सम्बन्ध न हो? यह हजम होने वाली बात नहीं है।

> भाषा की प्रकृति के स्तर पर हिंदी और तमिल के क्रियापदों व क्रियापद की रचना में जो अद्भुत समानता मिलती है वह खड़ी बोली और अवधी में नहीं मिलती या तमिल और मलयालम में नहीं मिलती। हिंदी को संस्कृत का सार सर्वस्व विरासत में मिला है और तमिल के दैनिन्दन वार्तालाप देखें तो संस्कृत से ओत-प्रोत मिलेंगे। जैसे अय्या वांग, सौक्किय्मा? (श्रीमान आइये, कुशल से तो हैं) या एन्न समाचारम (क्या हाल समाचार)। यहाँ अय्या संस्कृत आर्य का और सौक्किय्मा, संस्कृत सौख्यम ही रूपांतरण है, वैसे ही जैसे नक्षत्र को लोकभाषा में नखत, लक्ष्मण को लखन, व अक्षर को आखर कहा जाता है।

लेकिन तत्कालीन शासको व मिशनरियों को यही अभीष्ट था कि भाषावर्ग के नाम पर दोनों प्रान्त अलग ही रहें और भाषा व सांस्कृतिक समानता पर इनकी दृष्टि कभी न पड़े। शायद इसीलिए आजादी के बाद देश में प्रान्तों या राज्यों का बंटवारा भाषाई आधार

पर हुआ और वर्तमान में भारत के प्रत्येक प्रान्त के पास अपनी एक अभ्यासी भाषा है। यहीं से भाषा आधारित राजनीति शुरू हुई और पादरी कोल्डवेल की आत्मा को फिर से जागृत किया गया। कोल्डवेल का महिमामंडन शुरू हुआ, मरीना बीच के पास उनकी मूर्ति स्थापित हुई। दक्षिण में सक्रिय मिशनरियां इसकी प्रायोजक रहीं। देखते-देखते भाषाई आधार पर कथित "आर्य और द्रविड़" के बीच दीवार मोटी और ऊँची होती गई। भारत में उत्तर और दक्षिण दो भारत हो गये। जिनके शास्त्र और संस्कृति एक ही है उनमें विभेद हो गया। उससे पहले देश में ऐसी स्थिति कहीं नहीं थी। आजादी से दो दशक पूर्व ही तमिलनाडु में हिंदी के प्रचार-प्रसार को अपार समर्थन मिला था और वहां एक के बाद एक शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये थे। इसमें गाँधी जी के कनिष्ठ पुत्र देवदास गाँधी, डॉ. सीपी रामस्वामी अय्यर, पं. हरिहर शर्मा, पं. ऋषिकेश शर्मा, स्वामी सत्यदेव, मोटूरि सत्यनारायण, देवदूत विद्यार्थी और राम नरेश त्रिपाठी सहित कई मनीषियों का बड़ा योगदान रहा।

बालसुब्रमण्यम जी ने राजभाषा भारती में लिखा था कि तमिलनाडु में हिंदी प्रचार की सफलता का प्रमुख कारण यह रहा कि तमिलनाडु के लोगों को हिंदी सीखने में बहुत आनंद आया, अपनापन सा लगा क्योंकि भाषा की प्रकृति के स्तर पर हिंदी और तमिल के क्रियापदों व क्रियापद की रचना में जो अद्भुत समानता मिलती है वह खड़ी बोली और अवधी में नहीं मिलती या तमिल और मलयालम में नहीं मिलती। हिंदी को संस्कृत का सार सर्वस्व विरासत में मिला है और तमिल के दैनिन्दन वार्तालाप देखें तो संस्कृत से ओत-प्रोत मिलेंगे। जैसे अय्या वांग, सौक्किय्मा? (श्रीमान आइये, कुशल से तो हैं) या एन्न समाचारम (क्या हाल समाचार)। यहाँ अय्या संस्कृत आर्य का और सौक्किय्मा, संस्कृत सौख्यम ही रूपांतरण है, वैसे ही जैसे नक्षत्र को लोकभाषा में नखत, लक्ष्मण को लखन, व अक्षर को आखर कहा जाता है।

एक ही भूखंड की भाषायें होने के कारण उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं की वाक्य रचना में प्राकृतिक एवं प्रत्यय में, शब्द धातु में, कथन शैली में, भाव धारा में एवं चिंतन प्रणाली में यत्र-तत्र-सर्वत्र समानता मिलती है। इसी तरह आधुनिक भारतीय भाषाओं में जैसा अंतर दिखता है वैसा लोकभाषाओं में नहीं है। यह एक दुसरे से जुडी हुई हैं। परवर्ती तमिल सिद्धों की "बानी" उत्तरापथ के संतों की "वाणी" से मिलती जुलती है। अवधी से पूरब चलें तो क्रमशः भोजपुरी, बज्जिका, मैथिली, बंगला, असमिया आदि में अंतर और एकत्व की छटाएं दिखेंगी। इसी प्रकार अवधी से दक्षिण

चलें तो कुछ परिवर्तन के साथ बुन्देली, बघेली से छत्तीसगढ़ी जुडी हुई मिलेगी। छत्तीसगढ़ की एक भाषा का रूप कलिंगा उड़िया से जुड़ा हुआ है दूसरा बस्तर का भाषा रूप हाल्वी तेलगु के निकट पहुँचता है।

हमें जोर देने की जरूरत है कि भाषा की पाश्चात्य अवधारणा से अलग भारत की भाषा सम्बन्धी अवधारणा अपनी रही है। जिसमें एकात्म दृष्टि है और अंतर्भाषिक सम्बन्ध की स्वीकृति भी। भाषा की भारतीय अवधारणा ने भाषाओं के मध्य संगमन को हमेशा जोर दिया है। विविध भाषाओं में एकत्व की धारणा के कारण ही निरुक्तकार यास्क ने वैदिक और लौकिक शब्दों की समानता के अंतर्गत अर्थ को स्थित माना है। शौनक ने भी अर्थ संधान की दृष्टि से वैदिक और लौकिक वचनों में सम्बन्ध मानते हुए कहा है कि जो वैदिक है उसे लौकिक बना लेना चाहिए। लौकिक को पाणिनि ने भाषायाम (भाषा) कहा है, वहीं वैदिक को छन्दसि कहा है। परिस्कृति होने के कारण ही भाषा को संस्कृत कहा जाने लगा। आगे चलकर संस्कृत ने न सिर्फ भारतीय भाषाओं की प्रतिनिधि भाषा के रूप में काम किया बल्कि भारतीय भाषाओं की व्याकरणिक व्यवस्था में सहयोग दिया। भारत की सभी भाषाओं में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है। साथ ही उनके परिष्करण में संस्कृत अपनी भूमिका निभाती रही है। सभी भाषायें संस्कृत व्याकरण दर्शन का अनुशरण करती रही हैं। जिन भाषाओं का उद्गम मूल संस्कृत नहीं हैं, या जिनके साथ संस्कृत ने सहयात्रा की है उनके परिष्कार में संस्कृत का बड़ा योगदान रहा है।

भाषा की भारतीय अवधारणा व भाषाओं का संगमन समझने से आर्य-द्रविड़ भाषा विभेद का "पादरी षड़यंत्र" ढह जाता है, और इसके साथ ही उत्तर-दक्षिण के बीच बनाई गई भाषाई दीवार ढह जाती है। जरूरत भाषाओं की एकात्मता को "स्थापित" करने की है। भारतीय भाषाओं की एकात्मता पर एनसीईआरटी के प्रोफेसर प्रमोद दुबे के नेतृत्व में शब्दकोष का प्रकाशन हुआ है उसी तरह से भारतीय भाषाओं का "एक व्याकरण" बनाया जा सकता है। लेकिन भारतीय भाषाओं की एकात्मता की संसिद्धि संस्कृत के नेतृत्व में अंतर्भाषिक संबंधों के निर्णय से ही संभव हो सकता है। क्योंकि संस्कृत की दृष्टि में भारतीय भाषाएँ एक परिवार की भाषाएँ हैं, अतः संस्कृत को अन्य भाषाओं की भांति एक भाषा न मानकर प्रतिनधि भाषा के रूप में स्थापित करना चाहिए। संस्कृत व्याकरण दर्शन के आलोक में ही भारतीय भाषाओं की एकात्मता को समझा जा सकता है और भाषाई विभेद को खत्म किया जा सकता है।

अजवायन और इलायची से घरेलू उपचार

छोटी इलायची का रस तीखा, शीतल और हल्का होता है। इनको खाने से वायु, कफ, श्वांस, खांसी, बवासीर, बूंद-बूंद पेशाब होने वाले रोग, अरूचि, मिचली, उलटी, वात, जलन, यक्ष्मा और हृदय रोग में लाभकारी होता है।

अजवायन का सेवन करने से कफ, वात, मि तथा तिल्ली की सूजन मिटाती है। यह रूचि उत्पन्न करने वाली, तीक्ष्ण, गर्म, तीखी, हल्की, अग्नि को प्रदीप्त करने वाली, कड़ुवी और पित्त को उत्पन्न करती है और उदर-शूल, उदर-विकार तथा अजीर्ण के लिए सर्वश्रेष्ठ हितकारी होती है। अजवायन को तवे पर गर्म करके सेंधा नमक मिलाकर, पीसकर इनका चूर्ण बना लें। गर्म पानी के साथ तीन माशा चूर्ण खाने से जठर की वायु दूर हो जाती है। अजवायन, सेंधा नमक और हींग को एक साथ पीसकर इसकी फंकी लेने से वायु गोला रोग ठीक हो जाता है। अजवाइन और गुड़ खाने से शीतपित्त मिट जाता है। अजवायन में तिल मिलाकर, चूर्ण बनाकर, इनकी फंकी लेने से बहुमूत्रा रोग को मिटा देता है। अजवायन चूर्ण एक छटांक लेकर इन दोनों को एक साथ मिलाकर, आधा-आधा तोला सुबह-शाम खाने से मस्से और कमर का दर्द दूर हो जाता है।

अजवायन को पीसकर पुटली बनाकर सूंघने से जुकाम दूर हो जाता है। प्रसूत्ता स्त्री को अजवायन खिलाने से उसकी भूख खुलती है, भोजन को हजम करता है अपानवायु छूटता है, कमर के दर्द को दूर करता है। 6 मासा रस अजवायन को पानी के साथ पीसकर शरीर पर मलने से ठंडा पड़ा हुआ शरीर गर्म हो जाता है।

अजवायन की पुटली बनाकर तवे पर गर्म करके, हाथ-पैर में सेंक करने से हैजे, सन्निपात अथवा दमें के हमले से हाथ-पैर ठंडे पड़ गये हों तो इनसे शरीर में गर्मी आ जाती है। संधिवात से जोड़ों के जकड़ जाने पर अजवायन के तेल की मालिश करने से

ठीक हो जाता है या अजवायन को पीसकर इनकी पुलटिस बना कर बांधने से भी ठीक हो जाते हैं।

इलायची दो किस्मों में होती है- छोटी और बड़ी। इनको बारीक और मोटी भी कहा जाता है। छोटी इलायची को 'कागजी इलायची भी कहते हैं। छोटी इलायची का रस तीखा, शीतल और हल्का होता है। इनको खाने से वायु, कफ, श्वास, खांसी, बवासीर, बूंद-बूंद पेशाब होने वाले रोग, अरूचि, मिचली, उलटी, वात, जलन, यक्ष्मा और हृदय रोग में लाभकारी होता है। इनके सेवन से मुख की दुर्गंध दूर होती है, दांतों को और मजबूत और निरोगी बनाता है।

इलायची के दानों का चूर्ण 4 से 6 रत्ती, सेंकी हुई हींग एक रत्ती, इन दोनों को थोड़े से नींबू के रस में मिलाकर खाने से पेट की वायु, उदरशूल और अफारा ठीक हो जाता है। इलायची के दाने और पीपरामूल समभाग लेकर देसी घी के साथ प्रतिदिन सुबह चाटने से हृदय रोग मिट जाता है। इलायची के दाने और सोंठ समभाग लेकर, अनार के रस अथवा दही के नीथरे पानी में सेंधा नमक मिलाकर पीने से पेशाब छूटता है और मूत्राघात को मिटा देता है।

इलायची के दानों का चूर्ण शहद में मिलाकर चाटने से बूंद-बूंद होने वाले पेशाब के रोग को ठीक करता है। इलायची के दानों का चूर्ण, सेकी हुई हींग का चूर्ण, इन दोनों को एक साथ मिलाकर 3 रत्ती दूध के साथ देने से पेशाब में धातु निकलने को यह रोकता है। इलायची का अधिक सेवन करने से सगर्भा स्त्री को गर्भपात होने की संभावना होती है। इलायची को रात में कभी नहीं खाना चाहिए। रात को खाने से खट्टी अथवा तीखी डकारें आती हैं और कोढ़ होने की संभावना होती है।

-योगी अरुण

अध्यात्म

• भारतीय अध्यात्म जीवन की समस्याओं से अलग रहकर संकीर्ण दायरे में ही बन्द रहा है। जीवन की वास्तविकताओं से अध्यात्म को जोड़ने की जरूरत है, इससे अलग रहकर आखिर कौन-सा अध्यात्म विकसित किया जा सकता है?

-जयप्रकाश नारायण

• धर्म सम्बन्धी झगड़े-फसाद से केवल यह प्रकट होता है कि लोगों में आध्यात्मिकता नहीं है। धार्मिक झगड़े सदा खोखली बातों के लियें होते हैं।

-विवेकानन्द

मासिक राशि भविष्यफल-सितम्बर 2019

○ डॉ. एन.पी. मित्तल, पलवल

मेष- मेष राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह पूर्वार्ध में अलाभ तथा उत्तरार्ध में अच्छा फल देने वाला है। किसी नई योजना की शुरूआत हो सकती है। नौकरी जातकों का भी पूर्वार्ध की अपेक्षा उत्तरार्ध श्रेष्ठ रहेगा। हर कार्य में सतर्कता को प्राथमिकता दें। संतान से सम्भावित विवाद को टालें।

वृष- वृष राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह श्रमसाध्य लाभ देने वाला है। अधिक परिश्रम करने के पश्चात् फल मिलेगा। शत्रु सिर उठायेंगे पर उन्हें अपने मनसूबे पूरे करने में सफलता नहीं मिलेगी। परिवार में तनाव के अवसर आएंगे पर बुजुर्गों के हस्तक्षेप से मसले सुलझ जाएंगे।

मिथुन- मिथुन राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह सामान्य फल दायक है। किसी नई योजना पर कार्य किया जा सकता है, निर्णय लेने का अच्छा अवसर है। कोई पुराने लेन-देन का मामला भी सुलझ सकता है। संतान की ओर से चली आ रही चिन्ता मिटेगी। छोटी-बड़ी यात्रायें होंगी जिनमें सावधान रहना आवश्यक हैं।

कर्क- कर्क राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह शुभफलदायक रहेगा। अच्छी आय होने के आसार हैं। परिवार में थोड़ी नोक झोंक के पश्चात सामन्जस्य बना रहेगा। किसी लटके हुए कोर्ट कचहरी के कार्य में न्यायपूर्ण फैसला संभावित है। मन में प्रसन्नता बनी रहेगी। स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें।

सिंह- सिंह राशि के जातकों के लिए व्यापार व्यवसाय की दृष्टि से यह माह बहुत प्रयत्न करने पर अल्प लाभ कराने वाला है। व्यय भी विशेष होगा। पत्नी तथा बच्चों की सेहत के प्रति लापरवाही न बरतें। मानसिक उद्विग्नता रहेगी। किसी भी कार्य को करने से पहले अच्छी प्रकार सोचें। सोच समझ कर किया हुआ कार्य ही सफल दे पाएगा।

कन्या- कन्या राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह लाभ देने वाला है। कोई नई योजना भी बन सकती है। सरकारी नौकरी करने वालों के लिए भी समय अच्छा है। कोई पदोन्नति आदि भी हो सकती है। कुछ जातकों का सम्पर्क नए लोगों से हो सकता है जो उनके कार्यों में सहायक होंगे। दाम्पत्य जीवन में सामन्जस्य बनाए रखना होगा।

तुला- तुला राशि के लिए जातकों के लिये व्यापार -व्यवसाय की दृष्टि से यह माह सीमित अर्थ लाभ देने वाला है। परिश्रम अधिक करना पडेगा। विरोधी हावी रहने की कोशिश करेंगे। परिवार में सामन्जस्य बनाए रखने के लिए भी परिश्रम करना पड़ेगा। वाद-विवाद से बचते हुए अपने बुजुर्गों की राय लें। संयम से काम लें। स्वास्थ्य की ओर से सचेत रहें।

वृश्चिक- वृश्चिक राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह उत्तरार्ध की अपेक्षा पूर्वार्ध में अपेक्षाकृत अच्छा फल देने वाला है। किसी पुराने लम्बित काल कार्य के पूर्ण होने की संभावना है। ऐसे कार्य किसी हितैषी के हस्तक्षेप से सिद्ध होंगे। उसका कार्य की प्रगति पर भी असर पड़ेगा। ये जातक इस माह किसी धार्मिक कार्य में हिस्सा ले सकते हैं।

धनु- धनु राशि के जातकों के लिये व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह लाभ की स्थिति लिये हुए होगा। कार्य एक-एक कर बनेंगे। परिवारजनों में क्लेश की स्थिति बनेगी, एक दूसरे पर छींटाकशी होगी। ऐसी स्थिति से अपने आपको बडी होशियारी से बचाकर रखना होगा। स्त्री व संतान के स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें। यात्रा मे सावधानी बरतें। समाज में मान-सम्मान बना रहेगा।

मकर- मकर राशि के जातकों के लिये व्यापार व्यवसाय की दृष्टि से यह माह सामान्य फल दायक है। फिर भी व्यय अधिक रहने का योग है। कुल मिलाकर इस माह का अंतिम सप्ताह शुभफलदायक कहा जाएगा। अन्यथा मानसिक चिंता बनी रहेगी। जीवन साथी के स्वास्थ्य की ओर ध्यान दें। समाज में मान-सम्मान समान रूप से बना रहेगा।

कुंभ- कुंभ राशि के जातकों के लिये व्यापार व्यवसाय की दृष्टि से यह माह लाभप्रद कहा जाएगा। नई योजना बनाने के लिए भी अच्छा अवसर है। अपने तथा अपने भाइयों के स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहें। किसी धार्मिक यात्रा का योग अपने बुजुर्गों के साथ बन सकता है। दाम्पत्य जीवन में सामन्जस्य बनाए रखें। समाज में मान-सम्मान बना रहेगा।

मीन- मीन राशि के जातकों के लिए व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से यह माह अल्प लाभ कराने वाला है तथा खर्चा विशेष कराएगा। कोर्ट कचहरी के कार्यों में किंचित सफलता मिल सकती है। सरकारी कर्मचारियों के लिए भी कोई अच्छा समय नहीं है। उनका स्थानान्तरण भी संभव है। अन्य कारोबारी भी सोच समझ कर अपना धन कारोबार मे लगाएं। कोई अप्रिय सूचना भी मिल सकती है।

-इति शुभम्

भक्ति मंदिर में ही नहीं, जीवन में भी दीखनी चाहिए

○ आचार्य रूपचन्द्र

9-11 अगस्त, सिद्धाचलम् तीर्थ, न्यूजर्सी, अमेरिका में आदरणीय आचार्यश्री सुशील मुनि जी की 25वीं पुण्य-तिथि पर आयोजित विशेष समारोह में अपने विचार प्रकट करते हुए पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री रूपचन्द्रजी ने कहा- मंदिर, तीर्थ विशेषतः प्रभु भक्ति आराधना के केन्द्र होते हैं। श्रद्धालुजन वहां अपने-अपने इष्ट-देवता के चरणों में भाव-विभोर होकर पूजा-आराधना करते हैं। लेकिन वह पूजा-आराधना केवल मंदिर में ही नहीं, जीवन-व्यवहारों में भी दीखनी चाहिए। क्रोध के उत्तर में क्षमा रखना भी पूजा है। वैर-विरोध के उत्तर में प्रेम सद्भावना भी पूजा है। हिंसा के उत्तर में अहिंसा भी पूजा है। दीन-दुखियों के दर्द और कष्ट निवारण के समय उनके प्रति करूणा सेवा भी पूजा है। रोष, कटुवाणी के उत्तर में मधुर व्यवहार भी अपने में पूजा है-

रज्जब रोष न कीजिए, कोई कहे क्यों ही
हंसकर उत्तर दीजिए, हाँ वाबाजी यों ही।

आपने कहा- परमात्मा के सामने पूजा-आराधना करना आसान है। जीवन-व्यवहारों के साथ पूजा-भक्ति को जोड़ना कठिन है। हकीकत यह है प्रभु-दरबार में वही पूजा आराधना स्वीकार की जाती है जो जीवन से जुड़ी हो। फिर अलग से पूजा-आराधना की जरूरत ही नहीं। हमारा यह कार्य, हमारी यह सोच ही उसकी पूजा होगी। उस स्थिति में हमारे हर कदम के साथ प्रभु स्वयं होंगे। हमें उन्हें पुकार की जरूरत नहीं। वे स्वयं हमें पुकारंगे। संत कबीर के शब्दों में-

मन मेरा निर्मल भया, दुर्बल भया शरीर
पाछे-पाछे हरि फिरे, कहत कबीर-कबीर।

पूज्य गुरूदेव ने पूज्य आचार्यश्री सुशील मुनिजी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए कहा- उन्होंने परंपरा-गत मुनि चर्या को विस्तार देते हुए विदेश की धरती पर भगवान महावीर की वाणी को फैलाने का साहसी निर्णय लिया। सिद्धाचलम् तीर्थ उनकी तपस्या साधना का परिणाम है। इसे खड़ा करने में उन्हें जिन संघर्षों में से गुजरना पड़ा, उसके लिए इतना ही कहना चाहूंगा-

बर्फीले तूफानों में भी तुम हंस-हंस कर जलते रहे
धधकते अंगारों के बीच तुम हंस-हंस कर

चलते रहे

तुम्हारी यह खूबी हमें बहुत पसंद आई

तुम जहर निगलते रहे, अमृत उगलते रहे।

आपने कहा- मुझे प्रसन्नता है सिद्धाचलम् तीर्थ को खड़ा करने में मेरा भी यथासंभव यत्किंचित सहयोग रहा है। यह तीर्थ ज्ञान-दर्शन की आराधना का केन्द्र बने, यही शुभाशंसा है।

इस प्रसंग पर आचार्य सुशील मुनि जी के प्रवचनों/निबन्धों के आधार पर डॉ. प्रवीण जैन द्वारा अमेरिकन इंग्लिश भाषा में लिखित Jain Philosopy पुस्तक का विमोचन पूज्य गुरूदेव के हाथों से हुआ। आपने कहा- युवा पीढ़ी को उनकी भाषा में लिखित यह पुस्तक जैन धर्म-दर्शन की ज्ञानोपलब्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा। डॉ. प्रवीण नीरज जैन इसके लिए बधाई के पात्र हैं। यह पुस्तक घर-घर में पहुंचे, ऐसी मनो-कामना है।

इस समारोह में गुरू-मंदिर, मार्वल में गुरू-चित्र पट्ट, नवकार-मंत्र चित्र-पट्ट का अनावरण किया गया। आचार्य सुशील मुनि से जुड़े, जीवन-प्रसंग देश-विदेश के अनुयायियों ने सांझा किये। तीर्थ के ट्रष्टियों तथा स्वयंसेवी कार्यकर्त्ताओं की समर्पित सेवाओं से समारोह सानंद संपन्न हुआ।

पूज्य गुरूदेव के शिष्य अरुण योगी के साथ विदेश-यात्रा सानंद सुखद चल रही है। सर्वत्र पूज्यवर के प्रवचनों तथा अरुण योगी की योग-कक्षाओं में समाज बढ़-चढ़ के भाग ले रहा है। बोस्टन, वरमोंट, वाशिंग्टन डी.सी., मेरी लैण्ड तथा शिकागो की धर्म-यात्रा के पश्चात् जैन सेंटर ऑफ अमेरिका, न्यूयार्क में पर्युषण-पर्व की आराधना पूर्व-निर्धारित है। जिसका विस्तृत विवरण अगले अंक में आप पढ़ेगें।

भारत में पूज्या प्रवर्तिनी महासती मंजुलाश्रीजी के मार्ग-दर्शन में मानव मंदिर मिशन, नई दिल्ली, सुनाम पंजाब तथा हिसार, हरियाणा में शिक्षा सेवा-कार्य नियमित सराहनीय ढंग से गतिमान है।

अनमोल विचार

एक विचार लो। उस विचार को अपना जीवन बना लो। उसके बारे में सोचो उसके सपने देखो, उस विचार को जियो। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, नसों, शरीर के हर हिस्से को उस विचार में डूब जाने दो, और बाकी सभी विचार को किनारे रख दो। यही सफल होने का तरीका है।

-स्वामी विवेकानंद

-प्रवीण एवं लता मेहता के आवास पर आयोजित सत्संग में पूज्य गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए ह्यूस्टन, अमेरिका के भक्त-जन।

-आशीष एवं तान्या के आवास पर पूज्य गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए भक्त गण।

P. R. No.: DL(S)-17/3082/2018-20
Rgn. No.: DELHIN/2000/2473
Date of Post : 27-28

–सुशील मुनिजी और नवकार मंत्र के चित्रपट अनावरण के शुभ अवसर पर– छाया चित्र में (दाएँ से) श्री अरुण योगी जी, आचार्यश्री रूपचन्द्रजी महाराज, भट्टारक श्री चारुकीर्ति जी, श्रीमती पूनमजी पाटनी, मनक मुनिजी, श्रीमती नीरजजी जैन, श्री प्रवीणजी जैन, श्री ध्रुवजी कोटेचा, श्रीमती रश्मिजी जैन, श्री जयपतजी जैन, श्री सुरेंद्रजी जैन, श्री अशोकजी संचेती व अन्य। आचार्यश्री सुशील मुनि की 25वीं पुण्य तिथि का अवसर, स्थान– सिद्धाचलम तीर्थ, न्यूजर्सी अमेरिका।

–दो दिवसीय योग–साधना शिविर के पश्चात पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री रूपचन्द्रजी महाराज से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए साधक ग्रुप पूज्यवर के साथ है श्री अरुण योगी जी। ह्यूस्टन, अमेरिका

–हिंदू सत्संग भवन, बॉस्टन, अमेरिका में आयोजित योग–साधना क्लास के पश्चात साधकों के साथ श्री अरुण योगी जी।

प्रकाशक व मुद्रक : श्री अरुण तिवारी, मानव मंदिर मिशन ट्रष्ट (रजि.)
के.एच.–57 जैन आश्रम, रिंग रोड़, सराय काले खाँ, इंडियन ऑयल पेट्रोल पम्प के पीछे, पो. बो.–3240, नई दिल्ली–110013, आई. जी. प्रिन्टर्स 104 (DSIDC) ओखला फेस–1 से मुद्रित।
संपादिका : श्रीमती निर्मला पुगलिया